अँधेरे के ज़ुबान नहीं होती

सुधा गुप्ता

मूल्य तीस रुपये

प्रथम संस्करण 1984

प्रकाशक
हरीराम द्विवेदी
पाण्डुलिपि प्रकाशन
ई 11/5, कृष्णनगर,
दिल्ली 110051

मुद्रक
शांति मुद्रणालय दिल्ली 32

ANDHERE KE JUBAN NAHIN HOTEE
By Sudha Gupta Rs 30 00

भूमिका

सुधा गुप्ता हिंदी की महत्त्वपूर्ण कवयित्री हैं। समय के तनावों को उन्होंने जिस तरह कविता मे व्यक्त किया है वह उन्हें समकालीन कविता के साथ सम्बद्ध करता है और उनकी एक पहचान बनाता है। यह बात सुधा गुप्ता के सम्बन्ध मे खास तौर से कही जानी चाहिए कि वे सहसा ही, एक दिन मे, महत्त्वपूर्ण नही हुई हैं, वे लम्बे काव्याभ्यास के कारण निरंतर महत्त्वपूर्ण होती गयी है। जो कवि अपनी आन्तरिक दुनिया के साथ समय को पहचानता, मिलता, आवश्यकतानुसार उससे अलग करता है पूरे समय के लिए कविता के साथ होता है वह सुधा गुप्ता की तरह महत्त्वपूर्ण होने की क्षमता रखता है।

एक बात और कही जानी चाहिए, यह बात हमारे पिछले दशकों की काव्य भाषा के सिलसिले म है इसलिए सुधा गुप्ता के सिलसिले म भी है। बात यह है, कि कविता के लिए यह समय न तो आवेश का है और न सम्मोहन का। इसलिए हमारी कविता का ताप अब उस तरह जाहिर नही होता जसा पाचवे या छठे दशक मे हुआ करता था। मुझे एकदम लपट की तरह गरम, आक्रामक, हथगोले की तरह दूर तक फेंकी जा सकने वाली कविताओ की याद आती है जिनकी वापसी के लिए बहुत सी राजनीतिक पार्टिया और मच आज तक इच्छा करते हैं। लेकिन पाचवें छठे दशक के बाद कविता भाषा के बदलाव और जिन्दगी के अनेक स्तरीय दबावो से हमारी सवेदना की जमीन गहरी होती गयी है और इस लिए कविता मे प्रलयकारी भाषा और तेवर की जगह वह भाषा आ गयी है जो सुधा गुप्ता की है। वे जिस तरह की भाषा काम म ले रही हैं वह एकदम समारोह से कटी हुई किन्तु जिन्दगी के बहुत नजदीक है, सम्मोहन रहित और बाहरी तौर पर 'गुनगुनाहट' से दूर है। वह कोई 'लयदार बुनावट' की मिसाल नही है लेकिन खूबी यह है कि वह कविता भाषा के अतिरिक्त कोई दूसरी भाषा नही है।

यह कोई रहस्य या जादू नही है कि जिससे उनकी कविताए पारम्परिक और आधुनिक काव्य मुद्राओ से हटकर भी कविताए बनी रहती है। यह इसलिए होता है कि सुधा गुप्ता लगातार मानवीय स्थितियो के साथ सरोकार रखने की कोशिश करती हैं। यही उनकी काव्यशक्ति का उत्स है। इन मानवीय स्थितियो को जब वे पूरी तरह पहचान लेती हैं और उनके साथ आत्मीयता स्थापित करती हैं, वे बहुत सार्थक और कद्दावर लगती है, लेकिन जब वे स्थूल और जाने-पहचाने ससार और मुहावरो को कविताओ म रूपान्तरित करती है तब वे कविताओ को दरअसल आत्मीय ससार से अलग कर देती हैं, यही मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि

वे कविता की जिन मुद्राओ मे ताडन की कोशिश करती हैं उन्हे प्रसग बदलकर लौटा लाती हैं। इसमे कोई सदेह नही कि इन कविताओ म बडे मुद्दे होते हैं, लेकिन कविताए बडी नही होती। कविता के लिए जिस जमीन की जरूरत होती है उसम आत्मदान का सबसे बडा हिस्सा होता है। दुनिया भर के कवि उस जमीन की तलाश करते हैं जहा कविता का वृक्ष हजारो तरह से फलता है, प्रयत्न रहित होकर, प्रयत्न सहित भी। सुधा गुप्ता की कविताओ म वे कविताए मिलती हैं जि हे पढकर छोटी छोटी दुनियाओ के पार जाया जाता है, लेकिन छोटे अनुभवो को ऐसी कविताए भी मिलती हैं जिनके पार शायद खुद उन्हे जाना पडे।

सुधा गुप्ता की कविताओ के सिलसिले म यह भी कहना चाहिए कि वे महज स्त्री कवयित्री नही हैं। कविता मे शायद कहानी की तरह स्त्री पुरुष के अनुभव ससार का बाटना सम्भव न हो। मनुष्य की क्लान्ति, विपत्ति, निराशा, आह्लाद, विश्वास मत्री भय, पराजय उन्हे स्त्री पुरुषो की दुनिया मे अलग-अलग देखना मुश्किल है। ये अनुभव जहा से आते हैं, स्त्री-पुरुष सबके लिए आते हैं, समान रूप से चित्त को खि न अथवा उत्फुल्ल करते हैं, कभी अन्दर ही अन्दर पानी की धार से कटते पत्थरो की तरह चमकते हैं और कभी लम्बी सुरग की तरह नजर आते हैं। अनुभवो का यह ससार हजारो कारणो से बनता है। हमारे इद गिद का यथार्थ, उसके अन्तर्विरोध, हजारो जुबानवाली हमारी राज्य सत्ता, विरोध और विश्वास की द्वन्द्वात्मकता से गुजरती व्यवस्था कवि के मोहक सपने और उसका अन्तजगत और बहुत सी हजारो हजार सूक्ष्म स्थितिया एव सश्लिष्ट अनेक स्तरो वाली दुनिया बनाती है। इन अनुभवो के रेशे रेशे स कोई भी रचना धर्मी एक मजबूत रस्सी बनाता है फिर उस पर चलता है। यह चलना, चलन क खतरनाक आन द के लिए भी होता है और लक्ष्य तक पहुचने के लिए भी। सुधा गुप्ता की कविताए दूसरे किस्म की हैं। वे खतरनाक आनन्द तक नही जाती, व्यवस्था का विरोध करते हुए दुनिया के बदलाव की इच्छा पूरी करती हैं। उसका अभिप्राय पूरी जमीन को फिर स उवरा करना है। वे कविता से बन्दूक का काम नही लेती, इसलिए व्यवस्था विरोध का बडबोलापन और नाराज शब्दो की आतिशबाजी से अपने शब्द ससार को नही बुनती। वे शब्द को कथ्य के अ दर ही अ दर फलाती है यो कि इससे कविता की लय टूटती है लेकिन शायद उन्हें लय की कशीदाकारी करना अनावश्यक प्रतीत होता है।

उनकी कविताओ का कथ्य हमारी बेइन्तहा गरीब दुनिया स आता है। हमारी उस दुनिया स जो भूख अकाल, दुख और हजारो चालाकियो तथा क्रूरताओ स जर्जरित है। सुधा गुप्ता कभी किसी बरगद की, कभी किसी खेजडे की, कभी किसी नदी की कभी जवान लडकी की याद करती इस स्मृतिहीन जड और अजनबी दुनिया के लिए कविताए लिखती हैं। किन्तु हर कविता के बाद

ऐसा अनुभव होता है कि यह एक मरणास न दुनिया को बचाने वाली कविता है। यही उनकी खबी और कवित्व है। दु ख के समुद्र म डूबती कविताए यदि सहसा हम रोशनी की ओर ले जायें तो कोई चमत्कार नही है, सिफ आस्था और जीवन की शक्ति को पहचानने की बात है। इस आस्था के कारण ही सुधा गुप्ता बडी होती हैं। एक विप न और गूगी दुनिया को जुबान और शब्द देना और साथ ही दु ख का एहसास कराना कविता का सबसे पहला काम है, जिसे कोई भी कवि करेगा, सुधा भी कर रही हैं।

समकालीन कविताए प्राय आलोचना की भाषा म लिखी जा रही है। यह भाषा हमे इद गिद के ससार से, और एक अजनबी होते हुए मनुष्य से मिली है। सचमुच जब एक दुनिया सारे मूल्यो से बेखबर हो जाए तब कवि के पास भी आलोचना के सिवा कुछ बचता नहीं है। ऐसे समय मे कभी कभी अपशब्द, गाली, चौंका देने वाले उग्र शब्द कविता की दुनिया मे घडल्ले से प्रचलित हुए हैं, अकलात्मक काव्य शब्दावली आविष्कृत हुई है। कभी काम शास्त्र से काव्य-शास्त्र का प्रणयन हुआ है, लेकिन कविता को हमेशा एक सहज और आत्मीय कथ्य और भाषा ससार की जरूरत है। यह द्वद्व आज शायद सब रचनाधर्मियों का है कि उनकी यथाथ दुनिया के साथ कविता का रिश्ता कसे आत्मीयतापूण, अटूट और सघन हो। दुनियादारी और दुनिया के कथ्यों के बीच कविता कसे गुजरे कि एक भाषा तिलस्म को तोडते हुए भी कविता न टूटे। इस समय हमारा झगडा कविता से नही है बल्कि उस स्वाथ से है जो दुनिया को छोटी और टुकडो टुकडो मे बाटे दे रहा है।

हमारे सामने जो सवाल महत्त्वपूण और बडा है वह कविता साथक बनाये रखने का है क्योंकि तब ही हम दुनिया की विपन्नता, भूख, अकाल, मत्यु गैर-बराबरी के खिलाफ और स्वाधीनता या जो भी मनुष्य के लिए मूल्यवान है उसकी बात करने और कहने के हकदार होंगे। सुधा गुप्ता अपनी महत्त्वपूण साक्ष्य के लिए ही नही बल्कि कविता को बचाने के लिए समय की, वचारिकी की, भाषा की बहुत सी सकीणताओ को तोडकर मानवीय प्रतिबद्धताओ की उ मेषकारी रचनाए लिखेंगी, यह बात उ हे अपने समय की एक हैसियतवाली कवयित्री मानकर कहने का साहस कर रहा हू।

30, अहिंसापुरी
उदयपुर

—नन्द चतुर्वेदी

अनुक्रम

अंधेरे के ज़ुबान नहीं होती

□

पेड का दर्द

□

सुलगती लकडी की कथा

□

अधेरे के ज़ुबान नही होती

चेहरे पर बहती नदी
जब सहसा सूख जाती है
और पपडायी धरती
तडक उठती है
तब नदी और रेत मे
दूरी नही रहती
दरारें पडी धरती का अधेरा
बेज़ुबान बना
फैल जाता है
धरती की कोख मे ।

अंधेरे के जुबान नही होती

अधेरे के कोई जुबान नही होती
उजाला वडबोला होता है
अपने आसपास के परिवेश को
नगा करता हुआ।

वहते हुए धूप के झरने
पख फडफडाते पक्षी
तार और मुडेर पर बैठे
कितने भोले और मासूम
दिखाई देते है।
चेहरे पर बहती नदी
जब सहसा सूख जाती है
और पपडायी धरती तडक उठती है
तब नदी और रेत मे
दूरी नही रहती
दरारें पडी धरती का अधेरा
बेजुबान बना
फैल जाता है
धरती की कोख मे।

धीरे-धीरे
जहा सपाट धरती थी
वहा टीले उठ आते है
और वे टीसने लगते है
उनसे रिसती रहती है
बालू-बालू कसक।
उजाले का बडबोलापन

और मुखर हो उठता है
मुडेरो पर बैठे पक्षी
किसी भय या आतक से
उड़कर जा दुबकते है
अधेरे की गोद मे।

क्योकि—
अधेरे के जुबान नही होती
वहा होती है
केवल—
उदास चुप्पी।

हारा हुआ विश्वास

अपनी आखो को
दोनो हथेलियो से
ढक लेने से ही
बाहरी घटनाओ को
अनदेखा नही कर पाओगे ।

धरती की मटमैली छाती पर
टूटे हुए उदास पीले फूलो को देख
गुज़रे हुए वसन्त का
एहसास
नही कर पाओगे ।

घने जगल मे
भयभीत हिरनी
अपने को छिपाने की कोशिश
करती हुई
जा टकराती है
भेडिये की बनैली आखो से
बस भेडिये की गुर्राहट
उसके पूरे शरीर पर
चिपचिपाहट पैदा करने लगती है ।

जब उसने हसने की
कोशिश की
तो आसपास का
चौकस सन्नाटा
सिमट आया
उसके इद गिद ।

धूप मे बनने-बिगडते
हवा के झोके मे
वृक्ष से टूट-टूट कर
गिरे हुए पत्तो को देख
न कुछ कर पाने की
असमर्थता
सुख चेहरा लिए
वह सिफ शब्दो को
चिंगलाता रहा।

जब जब
चिडिया का फुदकना
उसने अपने नजदीक
महसूस किया
एक सम्मोहनी दृष्टि डाल
दूसरी ओर
मुह घुमा लिया
क्योकि उसे पता है
चिडिया का फुदकना
उसके जीवन मे
कई-कई बार हुआ है
एक सरसराहट-सी
उसके जिस्म मे फैली है
और फिर
झनझनाहट मे तब्दील होकर
खत्म हो गयी
लेकिन—
चिडिया को
कभी वह पिंजरे मे
कद नही कर पाया।
इस बार भी
बसन्त को सामने पाकर

वह जान गया कि
हर बार की तरह
आज फिर
हार जायेगा
अपने पस्त होते हौसले
और नामुराद इरादो को लिए
चुपचाप चुपचाप
रिसता रहेगा
उसका अपना विश्वास ।

बालू के टीले

बालू के दोनो टीलो के बीच का
समतल मैदान
सिसकता रहा।

ठहरी हुई रात की
मुडेर पर बैठा
भरोसे का पछी
भोर का इन्तज़ार
करता रहा।

उस सुनसान सन्नाटे मे
सपाके लगाती
बेरग हवा का शोर
रह रह कर
चिचियाता रहा।

सर्द हवा मे ठिठुरते हुए
जम गए
आकाश की सिल्ली पर
चिटके हुए फूल
एक जगली लतर
निरन्तर हवा मे हिलती रही
धीरे-धीरे
बालू ने
दिन की गर्मास को
जज्ब करना शुरू कर दिया
तपने लगा समतल मदान

हाड-मास झुलसाता
अलाव-सा जलता।

सडक किनारे का गुलमोहर
ऐसे ही दहकता रहा
बालू की आग मे
भर दोपहरी।

रात मे
ठिठुरेगा
सूखा हुआ
रेतीला समुन्दर।

नदी जब गलत दिशा मे चलने लगती है

नदी जब
गलत दिशा की ओर चलने लगती है
तो खेत गाव और घरो मे
घुसपैठ करने लगती है
तब—
इन्सान ही नही
समूची व्यवस्था
भयभीत हो जाती है।

पशु भटक जाते है
पक्षी बन्द कर देते है चहचहाना
और नदी
लम्बे लम्बे डग भरती हुई
जल्दी से जल्दी
हर घर मे पहुचना चाहती है।

सिर्फ एक सिसकी
अव्यक्त सी गूज
गिरती हुई पत्तियो की
चुप चुप सी आवाज।

नदी का गलत दिशा मे चलना
कितना खतरनाक है
आदमी और पेड मे
फरक नही रह जाता
समूची पृथ्वी
कब्रगाह बन जाती है।

जब जब नदी के
चलने का रुख
गलत होना है
आदमी के अन्दर का विश्वास
दरकने लगता है
जिन कदमो से नदी
चलकर आती है
उन्ही से जब वह लौट जाती है
तो शेष रह जाता है
भयावह सन्नाटा
चारो ओर।

सशयो का शोर

कितना शोर रहता है
गली के हर मोड पर
चीखता हुआ शब्द
घायल होकर
कही गिरता नही
बल्कि आदमी को भेदता हुआ
निकल जाता है ।

एक जगल
हरा भरा
जब अपनी असलियत पर
उतर आता है
तो अपने भीतर
खूंखार बनैले पशुओ को छिपाए
मौका आने पर
नोच खसोट लेता है ।

कितने ही बन्दूकधारी
अपनी नालो को साफ कर
वर्दियो पर बिल्ले
चिपका रहे हैं
भय से चुप चुप
सन्नाटा खाये रात के अधियारे मे
भयावह धडाके की गूज
पूरे नगर मे
फैल जाती है ।

सशयो का शोर
फिर वढने लगा है
इमारतो मे गुपचुप
फिर शुरू हो गयी है
सडक पर पिघले कोलतार मे
पावो के छाले रिसते हैं
लोग
खामोश
चुप्पी साधे
एक और धमाके की आवाज
सुनने को खडे हैं
सडक किनारे लगे
पेडो की क्तार से ।

एक रहस्यमय तिलस्मी
आवरण डाल
मौसम भी
चुपचाप
गुजर गया है
वगल से ।

अनाम परछाई का सर्प

आदमी कही से भी सुरक्षित नही है
न खुद से
न आसपास के परिवेश से
भय की धुधली
अनाम परछाईं का सर्प
जरा सा छिद्र पाकर
घुस जाता है
अ तरमन मे
सुरक्षा के धोखे मे
इन्सान
अह की चादर
और घनी ओढ लेता है।

अपने भीतर
कई कई दीवारे
खडी कर लेता है
अपने आप मे बन्द
छटपटाता
सिर पटकता
अन्दर ही अ दर
मृत बन जाता है।

जब भी
अपनी जमीन पर
पैर टिकाने की कोशिश करता है
तो महसूस करता है
अपना ही खून

खुद का साथ नही दे रहा।
किस पर करे भरोसा
यह कोई प्यार तो नही
      जिस पर भरोसा हो
रोटी का सवाल है
जिसे पजे से ही
      पकडना होगा
या घुट-घुट कर
      जहर पीना होगा
चूकि कई नगे मुर्दे
इसी तरह क्यू मे खडे ह
      आग से झुलसने की बारी मे
            प्रतीक्षारत है।

उपले सी धधकती बालू

कुछ दुघटनाओ का अन्त होता है
अखबार की सुख सतरो मे
और कुछ दुर्घटनाए
खामोशी से
जहा की तहा
दफना दी जाती है ।

हत्या, बलात्कार, महगाई, आत्महत्या
जनतन्त्र के समुद्र मे
किनारे पर आकर
फैल गए है
मौसम भी उनका पीछा करता हुआ
अब समझदार हो गया है।

इन्सान जन्मते ही
अपने अधिकार के लिए
सजग हो
आधी धूल
अपने साथ-साथ
ले आता है

कहा रखे कदम
हर ओर दलदल ही दलदल
ठोस जमीन
चन्द लोगो के लिए
है सुरक्षित ।

दूर तक रेगिस्तान मे
उपले-सी धधकती
बालू मे
सब कुछ ठूठ बनकर
रह गया है।

छोटे चेहरे पर बडे पोस्टर

वे कितने कितने लोगो की
निगाहो से
तराशे गए
सर्द मौसम मे ठिठुर कर रह गए
वक्त को चुपचाप
अपने नजदीक से गुजरता देखते रहे
बन्द कमरे की
बेजुबान सिसकियो को
हवा मे घुटना महसूसते रहे।

लेकिन जब वे
छोटे छोटे चेहरो पर
बडे बडे पोस्टर
चिपकाने लगते है
तो मुझे फिर
भय लगने लगता है
कि नदी का बहाव
अब बदलने वाला है
जिसमे न जाने
कितने मासूमो की हत्या हो जायेगी।

अक्सर ऐसा हुआ कि
उन्होने
तस्वीर के सामने
अगरबत्ती जलाई
फूल मालाए पहनाई
और श्रद्धा से नमन किया

दीवार पर करीने से टागी
कि अचानक—
आधी का एक झोका आया
सब कुछ तितर बितर हो गया
तस्वीर उन्ही के पैरो के नीचे थी
जिस पर लोग
इतमीनान मे
पैर रखकर गुजर रहे थे ।

मुट्ठी-भर उजाला

लो फिर
सोया हुआ अधेरा
धीरे-धीरे करवट बदल
आखें खोल रहा है
कच्चे टाको की सीवन
उधडने लगी है
अब पैंब द से काम नही चलेगा ।

चुपचाप उनकी निगाहो की
चुभन को सहना होगा
सूखी नदी मे
सीधे ताकते पत्थरो की तरह
उनकी हर मूखता को
झेलना पडेगा ।

पावो के नीचे
सूखे पत्तो की
ममरित ध्वनि
पिछले वर्षो के कोनो से झाकती
लाचारी को
उजागर करती है

—कि अधेरे कमरे मे
रोशनदान से आने वाला
मुट्ठी-भर उजाला
वाहर के फैले
प्रकाश की तुलना मे
कही अधिक तावतवर है ।

गरीवी का रेगिस्तान

ज़रा सोचो तो
जव झूठ का कवच
जिस्म पर से उतर गया हो
            और असलियत
अपने नगे पावो से चलकर
दूसरो तक पहुच चुकी हो।

सच्चाई को निरन्तर बचाए रखना
            उनकी नियति नही
                स्वभाव था।

जन्मो-जन्मो से अतृप्त
    अधूरी प्यास लिए
    विस्मृतियो की भूयभुलैया मे
                भटकते
        गरीवी के रेगिस्तान मे
    तलवो को झुलसा रहे है।

उनका पत्थर-सा वोझिल विश्वास
        वक्ष पर अटूट वन
        अकित हो चुका है।

कही कोई पारिजात नही है
नही है
गीले मन का गहराया एहसास

स्मृतियो मे उभरता
सुनहला स्वप्न

अचानक सकेती षड्यन्त्रो से
चूर-चूर हो बिखर गया।

अन्त मे रह गया।
अभिशापित सशयग्रस्त
चुप्पी की गुजलक मे लिपटा
अन्तरमन का
एकान्तिक विस्तार।

ग्लेशियर से फिसलते दिन

साल दर साल
ऋतुए आती है
और चली जाती है
टहनियो, फूलो और फलो का
भार उठाए ।

उम्र की जमीन पर
पडे है
ऋतुओ के गुज़रने के
निशान ।

रोशनी जब
रोज सुबह क्षितिज से फूटती है
तो फुटपाथ से लेकर
मेरे कमरे की खिडकी तक
दिखाई देती है ।
बीच की फटेहाली का
रास्ता पार करके
जगल और बस्ती की
पहचान देती
कुछ कहना चाहती है ।

शताब्दी की
चट्टानी ऊचाई पर
हिम ग्लेशियर से फिसलते
जख्म भरे दिनो की परतें
तारीखो मे तब्दील

हो जाती है
और तारीखो के किनारे बैठी
याद करती हू
मौन भाषा-सी
हवा मे उडते बिखरते
पातो-सी
और आकाश मे
रुई के गोल गुच्छा बादलो सी
जिन्दगी--
जो दिन माह और बरस के
गिलाफ से
अपने जिस्म को
ढके हुए है ।

आधी से पहले का सन्नाटा

रेत के समुन्दर मे
जब तूफान उठता है
तब बडे-बडे बगूले उठकर
जहा-तहा
दूह खडे कर देते ह ।

रेत के समुन्दर की लहरे
अपने साथ
सीप घोघे नही लाती
धरती की सहनशीलता
चारो ओर फैला देती है ।
मानसून का उन पर
कोई असर नही होता
वानस्पतिक दुनिया से दूर
उसका अस्तित्व
वीराने मे पनपता रहता है
वह फूल पत्तियो का
सहारा नही चाहता
घास से स्वय का अस्तित्व
नही छिपाता
रेत का समुन्दर
एकाकी गुमसुम
स्वय मे खोया रहता है ।

उसके लिए धूप और अधेरा

कोई मानी नहीं रखता
आंधी से पहले का सन्नाटा ही
उसका अपना है
शेष सब पराया ।

भट्टी चूल्हा

भट्टी का ही छोटा सस्करण
चूल्हा है
वह चूल्हा जो घर-घर जलता है
पेट की आग बुझाता है
पर खुद
आग मे जलता है।

भट्टी की आग मे
जो गर्मी है
वह चूल्हे की आग मे भी है
फरक सिर्फ इतना है
भट्टी मे सब कुछ झोक देते है
और चूल्हे मे सिर्फ लकडी।

सुबह होते ही
पेट की आग के साथ ही
चूल्हे की आग भी
सुलगने लगती है
हर घर मे
हर रोज़
दिन की शुरुआत
इसी तरह होती है।

कही भी तो
कुछ नही है ऐसा
जो गरीब-अमीर के
चूल्हे की आग मे
फरक करता हो।

युद्ध का सिलसिला

अभी एक युद्ध की समाप्ति की
घोषणा भी नही हुई थी
कि दूसरा युद्ध
विश्व के नक्शे पर
उभर कर आ गया
चिन्दी चिन्दी हो गया
सन्धि पत्र।

धरती पर
अपना सुहाग चिह्न छोड
सत्ता ने
सुबह-सुबह
वैधव्य ओढ लिया।

हाथ, पाव, नाक, आख सब
बारूदी धुए से लिपटे है
सबके दिमाग मे है
बस मौत।

आज पूरा विश्व
रोगी बन चुका है
युद्ध के कीटाणु
उसकी रग-रग मे है
कब अणु विस्फोट हो जाए
और यह पूरा नाटक
मच से

कब बिखर जाए
कोई नहीं जानता।

विषैली हवा का शोर
हर तरफ है
मृत्युपत्र पर हस्ताक्षर कर चुकी है
पगलाई हवा।

मुझ बीमार विश्व पर तरस आता है
न जाने कब एक खामोशी में
तब्दील हो जायेगी
उसकी हलचल
कोई उसका
मर्सिया पढ़ने वाला भी
जिन्दा नहीं रहेगा।

कविता से हुए जख्म

पहले तुम हवा का रुख पहचानो
तब उस ओर अपना मह करो
सख्त वस्तु चबाने के लिए
दाढ का मजबूत होना जरूरी है
और दूर तक देखने के लिए
दृष्टि का पैना होना।

तुम अपने रास्ते मे
कोई काट-छाट नही कर सकते
वे तुम्हे
चढायेंगे ऊपर-ऊपर
जहा उनकी हद समाप्त होती है।

तुम नही जानते
कब ज्वालामुखी फट पडे
और लावा तुम्हारी
हरियाली ढक कर
तुम्ह वीरान कर दे।

ढलान पर खडे हो तुम
जिस पगडन्डी पर
तुम चलोगे
फिसलन भरी है
सभल कर चलना होगा।

वह कब उजबक किसान से
घोडो का साईस

वन वैठा
पता ही नही चला
अब देश के सारे घोडो को
हाक रहा है।

सब
उसके एक इशारे पर
पक्तिबद्ध खडे होकर
एक साथ हिनहिनाने लगते हैं
और खुशी से भरकर
उनकी पीठ थपथपा देता है।

कविताओ मे पतझर मत आने दो
जो कविताए
रक्त वहाती थी
उन्हे तुम
गीष्म मे
पिछले ग्लेशियर से
परत दर परत
सरकाते जाओ
असल कविता
उनकी
खुरदरी जमीन पर
जख्म करती हुई
सुरक्षित निकल जायेगी।

डाक्टरी परीक्षण

वह उसका सिर से पैर तक
    परीक्षण करता है।

सिर पर हाथ रखते ही
    उम्र की तंग देहरी पर पड़ी
        सलवटें महसूस होती है
        अनुभव के नाम पर
        खल्वाट खोपड़ी।

आखो मे
झाकने पर
बुझी हुई राख
पीलियाया हुआ पानी
और—
यन्त्रणाओ की दास्तान कहती
    गहरे गड्ढो मे धसी आखे
ज्योही वह
उसके कान तक पहुचता है
    उसे बहरा पाता है
एक झटके से
वह अपने हाथ
    उसके कानो से हटा
    भयभीत हो जाता है।

चूकि उसे करना है
    उसका पूरा परीक्षण।
अपना

डाक्टरी फर्ज निबाहना है।

उसके गले का परीक्षण
करने के लिए
ज्योंही मुंह खोलने को कहता है
बारूद की तेजी से
विस्फोट करते शब्द
उसके हृदय को
छलनी कर जाते हैं।

वह डाक्टर है—
परीक्षण करना उसका काम है
घबराकर
वह उसके
पेट तक पहुंचता है
जो पहले से ही
पिचका था।
उसका पूरा हाथ
उसमें धसता चला जाता है
उसे लगने लगता है
उसका हाथ ही
पेट बन गया है
खोखला और सुरंग सा।

जल्दी से
अपने हाथ को हटा
उसने रिपोर्ट लिखी
एक जीवित लाश की
मजबूरी।

सेवा निवृत्ति

उम्र के पचपनवे वप मे
वे अपनी
नजरें घुमा कर देखते है
तो उन्ह
जवान बेटी की उदासी
आवारा बेटे का
नेताई चेहरा
लकवाए पावो से घिसटता
मझला
और बीमार मुरझाए चेहरे वाली
पत्नी का
जगल
अपने चारो ओर
नजर आता है ।

नौकरी के
आखिरी साल की देहरी पर
वे खडे है
अन्दर के दरवाजे
वन्द हो चुके है
बाहर
तपता रेगिस्तान है ।

जिन्दगी की शुरुआत
उम्दा महकते
गुलाबो से हुई थी

आज
उसीके काटे
पोर-पोर मे
चुभन दे रहे है।

खुशियो का
उन्होने
हिसाब लगाया तो पाया
उगलियो पर
गिनने लायक है।

उनकी आखो मे
बादल के
उदास टुकडे
तैरने लगते है
और उम्र
तनावो के चक्रव्यूह मे
फसी हुई।

गर्मी मे पिछोला फतहसागर

लो !
कितना नीचे झुक आया है
सूरज
झुलस रहे हैं
लोग
पड-पौधे
जानवर
सूख गए
सरोवर

पिछोला फतहसागर

बूद-बूद को
तरस रहे इन्सान
हैड-पम्पो पर
औरतो की भीड
चीखती-चिल्लाती
गाली गलोच करती
गर्मी ने
आपस की समझदारी को भी
पिघला दिया है।

फतहसागर झील
बरसात मे
मनमोहक आकर्षक
लजीली

नववधु सी
बनी रहती
एकाएक
मानो
बुढा गयी
चेहरे पर झुरिया
बदन पर
गूमड उठ आए।

सारी लुनाई
गर्मी ने
सोख ली
तलछट तक
पहुच गया
जल।

फटी चुनरी
और जगह-जगह
पैवन्द लगे
घाघरे मे
फतहसागर झील
रह-रह कर
पसीना पोछती
आखें फाडे
टकटकी लगाए
आकाश निहार रही।

सहसा कोई
बादल आकर
सूखे होठो की
प्यास बुझा जाए
अधनगे बदन को
ढक जाए।

चाबुक और घोडे

घोडे हमारे थे
मगर चाबुक उनकी थी
जब-तब अपनी चाबुक से
घोडो पर प्रहार करते
घोडे सरपट दौडते
उनके वश मे रहते।

प्यासे प्यासे
मजबूरी मे जीते
क्षण-भर भी सुस्ताते नही
निरतर दौडते रहते।

घोडे हमारे थे
चाबुक उनकी थी।

दौडते दौडते
जब हापने लगते घोडे
मुह से झाग निकलता
वे उसकी काठी को
अधिक कस
और मुस्तैद बनाना चाहते
मगर घोडे थे कि
हाप-हाप कर
वही बैठ जाते
अडियल बन जाते।

तब घोडे और चाबुक मे
होड लगती
चाबुक तेज सटकारे लगाती
और घोडे
जो निरन्तर दौडते रहे थे
धूल चाटते
हम खडे चुपचाप
यह सब तमाशा
देखते रहते
कर कुछ नही पाते ।

अब घोडे उनके काबू मे थे
क्योकि चाबुक उनकी थी
मगर घोडे हमारे थे ।

लडाई

आज भी गाव शहर और हर घर के
मोर्चे पर
एक लडाई लडी जा रही है
चाहे वह आसाम मे हो
पजाव मे
या मेरे घर के मोहल्ले मे।

कानून कभी उसके घेरे से
बाहर छिटक जाता है
कभी उसमे जकड
दम तोड देता है।

जो लोग लडाई मे
शहीद हो चुके है
उनके नाम रोशन नही होते
न ही उनके नाम की
कोई तख्ती लगती है
न ही तमगा बटता है।

क्योकि उनकी लडाई
इन्सान से नही
स्वार्थो से होती है।

हर आदमी के साथ
अलग-अलग किस्म की
लडाई है

चाकू-सी तेज
वातो सी तीखी
बारूद-सी भयानक।

लडाई का मकसद क्या है
इससे कोई सरोकार नही
क्योकि लडाई की शुरुआत मे
समझदारी रहती है
धीरे-धीरे
समझदारी
अधेरी सकरी गलियो मे
उलझ कर भटक जाती है
शेप रह जाती है
अन्त मे लडाई
सिफ लडाई
क्यो और किसलिए
ये प्रश्न
गौण हो जाते है।

इसान
लडाई का एक पर्याय वन गया है
और आजादी लडाई का सवव
आज हर वच्चा
पैदा होते ही
वन जाता है
लडाकू
और पूरा आदमी वनने तक
लडाई से अच्छी तरह
वाकिफ हो चुका होता है।

नदी पेड नाव

नदी के किनारे
पेड
बच्चों से
सिर हिला-हिला कर
खुश होते
पानी मे परछाईं देख
आपस मे
बतियाते।

पास बधी नावें
सोचती
नदी के किनारे
उनके अपने है
बहुत अपने
जहा अपना
सब कुछ देकर
एक ठौर बधी रहती है।

बहता जल
किनारो को
स्पर्शित करता
सहलाता
और गुजर जाता।

दिन भी
नदी की तरह
धीरे-धीरे

बहते हुए
निकलते रहते।

नदी के
दूसरे किनारे
धोबी घाट
छऽऽप्-छऽऽप की
आती आवाज
भट्टी निकलता
धुआ
नदी सोते से जागती
उदास चेहरे से देखती।

घाटो पर नहाते
स्त्री पुरप बच्चे
दिन की
चहल पहल मे
नदी भूल जाती
अपना दर्द
रात की खामोशी
नदी को अकेला कर जाती
लहरें प्यास से
थपथपाती
किनारो को
लगातार
सान्त्वना देती।

रात के अधेरे मे
गूजती
रह रहकर
पण्डुकी की
आवाज

जवान लडकी

अपनी लडकी की
गदराई गुलमोहर-सी
महकती फूलती
देह को देख
उसकी बुढियायी
और झुर्रियोदार आखे
पीडा से भर उठती है
वह उसकी
इकलौती लडकी है
एकमात्र निशानी।

जब भी वह
घर मे होती
उसकी सास से उठती
यौवन की महक
उसके अगो को
सिहरा जाती।

उसके मन मे
उमडता प्यार का सैलाब
उसकी बूढी देह को
भिगोता नही
डुबाता चला जाता।

वह निरुपाय शून्य सी
विवश हो

स्वय को कौंचती रहती।

उसे पता है
दहेज के अभाव मे
उसकी बच्ची का
गमकता महकता जिस्म
एक दिन
सूखकर
निस्तेज हो जायेगा।
अपनी तरह वह
किसी बूढे के हाथो
उसके भाग्य का
निर्णय नही करना चाहती
जिसकी एकमात्र
निशानी
काले लम्बे बालो वाली
महकती चहकती है
यह लडकी।

उसकी लडकी के
सुन्दर जवान शरीर से
एक गूज निरन्तर
अनुगूज बनकर
टकराती रहती है
घर दीवार और
उसकी आत्मा मे।

उसके बुढापे के
ठडे शरीर मे भी
कपकपी दौड जाती है।

लडकी जब तक

बेफिक्र दौडती रही
वह निश्चिन्त रही
अब ज्यो ज्यो
वह गुमसुम और उदास
रहने लगी
उसकी परेशानी
निरंतर बढ रही है
लेकिन वह
अपने जीवन का क्रम
इस लडकी और लडकी की लडकी
के साथ
दोहराना नही चाहती।

व्याकरण एक देश का दूसरे देश से
बदला लेता हुआ

मैं सोच रही हू
अपने बारे मे
अपने देश के बारे मे
और सारी दुनिया के बारे मे।

कैसा होगा
काली मिटटी का इतिहास
लाल पीली मिटटी से
जुडता हुआ।

समुद्र का तूफान
जब सातवें आसमान पर
पहुचेगा
भयभीत होकर
सारे पक्षी दुबक जायेंगे
कोई विकल्प नही होगा
मानवीय सवेदन का।

पतझर—
वृक्षो तक ही नही रह जायेगा
सम्पूर्ण मानवता को
अपनी गिरफ्त मे
ले लेगा
कितना खौफनाक होगा
व्याकरण—
एक देश का दूसरे देश से

बदला लेता हुआ।

काली आंधी के बीच
युद्ध की उठती हुई लपटें
शेर की गुर्राती आंखों में
तब्दील हो जायेंगी
भीतर का अंधेरा
बाहर
अपने डैने फैला
ढक लेगा
समूची दुनिया को।

भावी यात्रा

जब भी तुमने गुनगुनाने की कोशिश की
तुम्हारी गुनगुनाहट
चीख में बदल गयी
दरकती हुई बाज का
टीसता दर्द
अंधेरे में हुई
दुर्घटना जैसा होता है।
जिसका पता तुम्हारे सिवाय
किसी को नहीं चलता।

देश का वैज्ञानिक इतिहास
टांग दिया जाता है
शहर के सबसे ऊंचे
टावर पर
या कैप्सूल बना
दफ्ना दिया जाता है
हजारों फीट गहरी
धरती में।

जितनी भी यात्राएं
तुम करते रहे हो
बेमानी और निरर्थक रहीं
अब नये ढंग से
देश के नक्शे को
आदमकद शीशे की तरह
सामने रख

शीशे पर बिना खरोंच डाले
अपना चेहरा देखते हुए
यात्रा शुरू करो।

तुम्हारा पहला पडाव
जहा भी हो
वहा तुम्हे पता रहना चाहिए
कि कभी भी तुम्हारा
पोस्टमार्टम किया जा सकता है।

अगले पडाव पर
यदि तुम जिन्दा न भी रहे
तो तुम्हारा बेटा चल पडेगा
उसको भी
अपने मुकाम पर पहुचने के लिए
जगली जानवरो को
पालतू बनाना पडेगा
और तुमसे
जहा-जहा
चूक हो गयी थी
सतर्क और पैनी दृष्टि रखकर
देश की सख्त पीठ पर चलना होग

छोडो—
ये सब भविष्य की बातें हैं
वर्तमान मे
पूरी ईमानदारी से पेश आना है
जिन्दगी को नये सिरे से
रोपना है।
उम्र का अधिकाश हिस्सा

बटता चलता है
विभिन्न रगो के आकारो मे
और जीवन
भिन्न खण्डो मे विभाजित हो
बिखर जाता है।

शब्दो का अर्थ

क्या तुम बता सकते हो
शब्दो की गति क्या होती है
कितने कोमल और
कितने फौलादी होते है
शब्द ।

मैंने जब भी
खुशी को कोई
शब्द का जामा पहनाया
वे शब्द इतने खोखले और
बेमानी हो गए
कि खुशी भी अजनबी बन गयी ।

बदलते सदर्भों मे
अर्थों को
उजाड वीरान धरती तक खीच लाई ।
कुछ भी विरासत मे नही मिलता
सब अर्जित करना होता है
यदि मिला भी तो
कोढीला दाग
झुलसी चमडी
मन पर रेगता सस्कारो का बोझ ।

समझदारी—
यह एक शब्द
आतकित करता रहा

अन्त तक।
शब्द जिनसे प्यार उमडता है
घृणा उपजती है
अन्त तक सहयात्री बने रहते हैं।

पेड का दर्द

पेड
अब भीतर ही भीतर
जागरूक हो गए है
बदला लेने को
उन्होने अपनी जडें
धरती मे गहरी उतार दी है
ताकि कटने के बाद भी
जड से न उखड पाए
मौका देख
फिर से फूट कर
हरे भरे बन जाए।

पेड का दर्द

पेड कटने की आवाज़
कानो मे
लगातार आ रही है
उनकी
नुकीली दातो वाली आरी
पेड को चीर रही है।

वे पेड
जो जगल से दूर
राजमार्ग पर लाकर
लगा दिए थे
आज फिर से
उन्हे काटकर
राजमाग से
अलग करने की
साजिश हो रही है।

उन्हे नही मालुम
उनका गुनाह क्या है
वे तो
थके हारे
धूप से झुलसते इन्सानो को
शीतल छाया देते रहे
निरन्तर
आधी यानी तूफान से
जूझते रहे।

उनका दद
अपने कटने का नही
वरन्
मनचाहे इस्तेमाल का है।

पेड
अव भीतर ही भीतर
जागरूक हो गए हैं
वदला लेने को
उन्होंने
अपनी जडें
धरती मे गहरी उतार दी हैं
ताकि कटने के वाद भी
उखड न पाए
मौका देख
फिर से फूट कर
हरे-भरे वन जाए।

बूढा वरगद

एक बूढा वरगद
जिसने अपने सामने
कितने-कितने
पतझर और वसन्त
गुजरते देखा है
स्वय पर झेला है
आज भी
उसी तरह खडा है।

एक सन्नाटा लिपटा है
चारो ओर
रह-रहकर झिल्लियो का शोर
और पत्तो की
ममरित गूज
फैलने लगती है
वरगद की शाख पर वैठी
एक नन्ही
सोन चिरैया
जव चहकती है
तो वह पुलक उठता है
अपने गुजरे दिन
याद करता है।

उससे मैंने कहा
सुनो—
अपनी बूढी बाहो को

आकाश छू लेने दो
अपनी शाखो पर
घोसले बनने दो
और अपनी जडो मे
पीढियो की खुशहाली ।

वह व्यग्य मे मुस्कुराया
आसपास
चौकन्नी दृष्टि डाल
बूढा बरगद
अपनी लचीली टहनियो को
हल्के से हिला
खामोश हो गया ।

कटता हुआ जगल

वृक्ष कट रहे हैं
जगल साफ हो रहे हैं
चुप्पी साधे सब वृक्ष
अपने कटने की बारी मे
गुमसुम से है।

सिफ शोर कर रहे है
वे पक्षी
जो उन पर
रोज
साझ होते ही
करते थे
अपना बसेरा।

आज वे
निराश्रित हो
भटक रहे हैं
इधर-उधर
खोज रहे हैं
नया नीड
वे नही जानते
उनका नीड नष्ट कर
इन्सान
खुद का बसेरा करेगा।

वृक्ष चुप है

उन्हे अपनी नियति पता है
कटे हुए वृक्ष को मालुम है
उसके मज़बूत लठ्ठे
घर के दरवाजो और चौखटो म
लगा दिए जायेंगे
या नदी की ढलानो से
बहते हुए
दूरस्थ प्रदेशो मे
पहुचा दिए जायेंगे।

यो होगा
उस हरे भरे जगल का अन्त
स्तब्ध वृक्ष
शान्त चुप
सारा दृश्य देखकर भी
अनदेखा कर देंगे
और—
निराश्रित पक्षियो का
शोर सुनते रहेंगे।

पेड

पेड
अपनी चुप्पी मे भी
　　सजग है
आसमान से आती
　　चील को देखता है
जानता है—
उसका आश्रय
इसी पेड की शाखाए है।

आधी का शोर सुनकर भी
　　चुप रहता है
आधी रास्ता बदल कर
　　निकल जाती है
　　या सिर पर से
　　　　गुज़रजाती है।

बारिश मे
ओलो से
अपने को बचाता नही
　　सब कुछ
　　घटित होता हुआ
　　देखता रहता है
　　　　अविचल
　　　　तटस्थ।

एक आश्वासन से भरी चुप्पी

उसके थरथराते होठो मे
दबी रहती है
जो कभी कभी
ठडी हवा के साथ
चीत्कार मे
बदल जाती है।

पेड की जिजीविषा

कट कर भी पेड
मरता नही
इतज़ार करता है
फिर से
पनपने का
कटे पेड पर
न पक्षी चहचहाते हैं
न गिलहरी दौड लगाती है।

साझ को
बसेरा करने भी
कौव्वे नही आते
पेड
अपनी विरूपता पर
रोता नही
मन ही मन
दु खी नही होता
बस करता है
इतज़ार
फिर से हरा होने का।

वर्षा
उसके सिर से होकर गुजर जाती
छूती नही
सहलाती नही
पोर पोर मे

वहती नही
फिर भी वह
निर्मोही वना
खडा रहता है
अविचल।

पेड की जिजीविषा
पत्तो और शाखाओ मे नहा
उसकी जडो मे है
जो वहुत गहरी
उतर चुकी हैं।

पेड
अवसर की ताक मे है
वर्षा के जल को
सोख कर
फिर से
हराभरा वन जाना चाहता है
जडो मे छिपी
चेतना की
सुगवुगाहट
उसके वाहर
अकुराने लगी है।

जव तक जडें
मिट्टी को पकडे हैं
कोई भी पेड को
ठठ नही वना सकता
जडें
काट नही सकता।

खेजडी का पेड

गरीबों का विश्वास
और जिजीविषा
चिपकी है छाल सी
पेड के तने पर
मनौतियो की झालरें
लटक रही है
चिथटा चिथडा हुई
खेजडी के पेड पर।

गल-गल कर
टुकडे-टुकडे हो
बिखर जायेगी
एक दिन
इंतजार करते रहेगे
गरीब के आसू
कब उनकी मनौती
फलीभूत होगी।

खेजडी का पेड
सडक के किनारे
सबकी मनौतियो का
भार ढोये
खडा है
निर्लिप्त भाव से।

जिन्दगी के

दो चार क्षण
विश्वास के दे देता है
निष्फल नहीं जाती
उसकी तपस्या
रोज
दो चार नये वस्त्र
पहना जाता है
लोगों का विश्वास।

सुलगती लकडी की कथा

सूखी धरती की तडक
और जगल की आग ने
इन्हे तोडा है
अकाल के पजो ने
नोचा है
इन्हे समय की पहचान नही
ये तो घास पत्तिया और
फूलो की भाषा जानते है
उनसे ही इन्होने जीना
और हसना सीखा है।

सुलगती लकडी की कथा

सामने कुहरे की चादर ओढे
छोटे-छोटे समूह मे
आग तापते
ये गिरामिया भील
पेट के पावो से चलकर
यहा पत्थर ढोने आए है।

फटी गुदरी कथरी को
जतन से समेटे
बर्फीली धरती पर
रात मे
वदन को सिकोडे
ठड मे ठिठुरते
रहते है
सुवह उठते ही
ठेकेदार की
कडकती आवाज का
सामना करते है।

सहमे सकुचाए
अगल-वगल
चूना मिट्टी पत्थर को
मकान की शक्ल देने मे
जुट जाते है।

ईंटो के चूल्हे पर
चढी हाडी
तगारी की परात मे

मक्की का चून
सुलगती लकड़ियों की
अपनी एक कथा है।

सूखी धरती की तड़क
और जगल की आग ने
इन्हें तोड़ा है
अकाल के पजों ने
नोचा है
इन्हें समय की पहचान नहीं
ये तो घास पत्तियों और
फलों की भाषा जानते हैं
उसे ही इन्होंने जीना
और हंसना सीखा है।

इन्हें पता नहीं
भेड़िया कब दांत पैने कर
नाच लेगा
कुत्ते कब मांस चबाते-चबाते
हड्डी भी चबा जायेंगे।

ये तो
मासूम भोले
किसान भील
घुर जगल की दुनिया में
भीतर की सृष्टि का
केवल एक क्रम जानते हैं।

इनका जीवन
हल फावड़ों
और कुदालों का है।

इनके पास देने को कुछ नहीं
सिर्फ भोली आंखों का

मौन प्यार है
चिडियों-सी सरलता
और बादलों-सा उल्लास है ।

ये औरत मरद और बच्चे
गारा ढोते
पत्थर कूटते
कमठाने का काम करते
कितना कुछ कह जाते हैं
स्वच्छ झरने से
मन में
उतरते चले जाते हैं ।

विवशता

झड़बेरी की झाड़ियों सा अटा
उसका आधा तन
किसी जंगली डूंगरी सा
लगता है।

आसपास
टीमरू लेसूए और फाग के रूख
ऊंचे मचान से खड़े हैं
आंखों में ढेर-सा अंधेरा
बालू-सा
किरकिराता है।

कान टूर आहट पर चौकन्ने
पानी से भरे
पोखरे में फैली काई
उसकी जिन्दगी का पर्याय
बन गयी है।

जब भी वह
हंसने की कोशिश करता
बस
दांत निपोर कर रह जाता।

कोठड़ी के दरवाजे पर
टूटी खाट पर बैठा
उसका बूढ़ा मरियल बाप
खुल्ल खुल्ल खांसता

और एक झटके से
बगल मे ही बलगम थूक देता।

पास बैठा खजैला कुत्ता
टुकुर-टुकुर ताकता हुआ
सिर उठाकर देखता
फिर कोने मे दुबक कर
आखें मूदकर
बैठ जाता।

भूख से उसकी आतें
कुलबुलाती रहती
वह जानता है
मजूरी के नाम पर
लात घूसे और गालियो के सिवाय
कुछ नही मिलेगा
यदि मिला भी तो
कमीशन के नाम पर
ठेकेदार
आधी मजूरी खा जायेगा।

मसान मे जले शव की राख
और दुर्गन्ध
उसे अपने आसपास
बिखरी
और फैली
महसूस होती है।

यह सब देख
उसकी छाती दरक उठती है
और उसमे
खून का थक्का
जम जाताहै।

भूख

यह अपनी बेबसी में
चीखती है
बच्चों पर
'कम्बख्तो नासपिटो
शरीर की बोटी-बोटी को
रोटी की तरह चबा जाओ।

उसकी आवाज़
किसी माद से निकली लगती है
और तीखी होते होते
एकदम सिसकियों में
बदल जाती है।

आदमी का बुखार
भूख है
आदमी की देह
भूख है
आदमी के जज़्बात
भूख है
इन सबको रोटी चाहिए
गुस्से की
यातना की
और सच्चाई की।

जिस पर भरोसा किया जाए
उस पर

जिसने जन्म दिया
और वेवसी लाचारी मे
दम तोड दिया
या उस पर
जिसने हाथ पकड कर
साथ निबाहने की सौगन्ध खाई
और एक दिन
चन्द सिक्को के पीछे
सारेआम नीलाम
कर दिया ।

भूख कब तक धोखा देती रहेगी
इसान के जमीर को
उसके इसान बने रहने को ।

भूख

वह अपनी बेबसी में
चीखती है
बच्चों पर
'कम्बख्तो नासपिटो
शरीर की बोटी-बोटी को
रोटी की तरह चबा जाओ।

उसकी आवाज़
किसी माद से निकली लगती है
और तीखी होते होते
एकदम सिसकियों में
बदल जाती है।

आदमी का बुखार
भूख है
आदमी की देह
भूख है
आदमी के जज्बात
भूख है
इन सबको रोटी चाहिए
गुस्से की
वासना की
और सच्चाई की।

किस पर भरोसा किया जाए
उस पर

जिसने जन्म दिया
और वेबसी लाचारी मे
दम तोड दिया
या उस पर
जिसने हाथ पकड कर
साथ निवाहने की सौगन्ध खाई
और एक दिन
चन्द सिक्को के पीछे
सारेआम नीलाम
कर दिया।

भूख कब तक धोखा देती रहेगी
इसान के जमीर को
उसके इसान बने रहने को।

खेत का कोना

बैठे बैठ वह सोचता है
सरपच का बेटा
कल आकर धमकी दे गया
बाढ मे
घर के बरतन भाडे
गुदडी कथरी
सब बह गए
सरपच का बेटा नेतागिरी
करता घूमता है।

उसे याद आता है
बेटी का आणा
अभी हुआ नही
लुगाई भी बाढ मे
बह गयी
उसका भी
कोई आस-सास
भरोसा नही
बेटी का आणा अभी हुआ नही।

टूटी चिलम का धौंसा लगा
वह खासने लगा बुरी तरह
हफनी से पसलिया
पिराने लगी
अलाव का धुआ
और बढने लगा

अपनी मिची आखो को
सुरदुरी हथेलियो से
रगडते हुए
वह अपने चारो ओर के
अधेरे मे
सुनता रहा
भगतिया के रहट के
चलने के साथ-साथ
उसके गीत का
मधुर स्वर
उसने सोचा—
डागर-ढोर बेचकर
वह सरपच को लगान चुकाएगा
खेत का जितना कोना पकड सकेगा
अपनी मुट्ठी मे मजबूती से पकडेगा
क्योकि—
बेटी का आणा अभी हुआ नही।

किरच-किरच होती जिन्दगी

टीले पर
दूर दूर
सहमी सकुचायी सी
बिखरी हुई
बदरग झोपडिया
माटी को सानकर
बनाई गयी
रखडो और केलू से पाटी।

अगल बगल
जगल का वीराना
सनसनाती हवा मे
दहकते चिटखते
टेसू के चटकीले फूल
झोपडियो का सन्नाटा
और मुखर हो उठता।

मागी अपने
छोटे छोटे
नगे पावो और नगे बदन से
दूर खेत मे
डाखले बीनती
मा की गोद मे
जाने को मचलती
ढलान से नीचे दौडती
रिफमती

काटो से उलझती।

तपती धूप मे
भूखा पेट
किरच किरच होती।
ज़िन्दगी।

मागी नही जानती
ज़िदगी क्या होती है।

मा के स्तन से
मुह लगा
जब पेट भरना चाहती है
तो दूध की जगह पाती है
मा का जर्जर तन।

टीले पर
दस-बीस झोपडिया
जिनके चारो ओर
फैली हुई हैं
मुर्दा छायाए
मिनखो के नाम पर
चन्द ठठरिया
टीले के पत्थरो की तरह
अपनी ज़िन्दगी का
बोझ उठाए
सारी उमर सीझती
गरीबी की आच मे।

उखडे हुए लोग

ये लोग
डामर से राजमार्ग तैयार कर रहे हैं
उखडे हुए लोग हैं
अपनी जमीन छोड
वक्त के ज्वार मे
यहा आधी धूप सहने को
छोड दिए गए है।

दोपहरी भर
डामर मे लिपटे
सडक पर कन्करीट डालते
अपने आप को
धूप की भट्टी मे जलाते।

इनकी आखो की नमी को
धूप ने सोख लिया है
इनके पेट पर
निरंतर चीटिया रेंगती रहती हैं ।

इनकी रीढ
इस सदी की तरह
झुक गयी है।

ये भोले भाले लोग
सडक के किनारे
लीमडी के पेड के नीचे

चूल्हा जला
दो जून का इन्तजाम कर
चादनी मे
रेतीले फर्श पर
विश्वास लिए
जीवन की तमाम उम्र
यू ही गुजार देते ह।

इनका न कोई भविष्य है
न वर्तमान
अतीत को तो इन्होने
कभी का भुला दिया है।

मौसम की मार को
ठेकेदार की डपट की तरह
सहते
लू मे तचते
ये बेघर लोग
हर स्थिति को अपना बना
उन्मुक्त रह कर
खिलखिलाते रहते।

जीवन का अर्थ
इनके लिए
दिन-भर तचना
और रात
ताडी पीकर
निश्चिन्त सोना है।

जिन्दगी की मार

बूढे की आखिरी सास सी
टेकरी पर
जर्जरित फूस की झोपडी
खामोशी उदास
किसी भी क्षण
गिरने को आतुर
झोपडी के कुछ तिनको से
कोने मे
गौरया ने घर बना लिया है
दूसरे छोर पर
बिल्ली
अपने प्रसव के लिए
जगह ढूढ रही है।

चूनकी
इन सबसे बेखबर
अपने पाच बच्चो को दुबकाए
गरीबी की आग मे
झुलस रही है।

जिस दिन
उसके पति की मौत हुई
खामोश विमूढ
बैठी रही
रोयी नही
रोने आयी

कुछ लुगाइयो ने ही
रो-रोकर
उसकी झोपडी कपा दी
दो चार लोगो ने
चन्दा कर
दाह सस्कार कर दिया।

चूनकी तब भी
चुप्प निर्निमेष
सारी घटना से
तटस्थ बनी
रही।

टूटी माटी की हाडी
दो चार ठीकरे
अधकार
और पथरीली खामोशी
बस यही शेष रह गया है
उसके हिस्से।

जब तक बच्चो का रोना
और सुबकना सुनाई देता है
अन्दर ही अन्दर
उसके हिरदय मे
कुछ दरकता रहता है।

पुरानी यादें
भुतही छाया सी
मडराती रहती है।

दिन-भर चूनकी
लकडी बेचकर
इन्तजार करती है
बच्चो का

जो जगल मे निकल गए थे
एक आशका घेरे रहती है,
कि आज कोई बालक
जगली पशु का शिकार
न हो गया हो
(दीघ नि श्वास ले सोचती है,
यदि शिकार हो जाता तो एक पेट
तो कम होता)

रात मे
चूनकी के हाथ पग
दद से टीसते है
उससे भी अधिक टीसता है
उसका दिल
कि कही किसी दिन
बच्चो के बाप की तरह
मेरी भी अकाल मौत हो जाए
तो क्या होगा
कम उम्र
बालको का।

□□